IJFANS INTERNATIONAL JOURNAL OF FOOD AND NUTRITIONAL SCIENCES
ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 11, Issue , 06 2022

दक्षिणामूर्ति स्तोत्र में केवलाद्वैतवाद ।

डॉ. महेश जी. पटेल

असिस्टेंट प्रोफेसर, पोस्टग्रेजुएट संस्कृत डिपार्टमेंट, सरदार पटेल यूनिवर्सिटी । वल्लभ विद्यानगर।, maheshgpatel78@gmail.com

सारांश

'दक्षिणामूर्तिअष्टकम' की पढ़ाई के लिए जन्मजात इच्छा और व्युत्पन्न मानसिकता की उम्मीद की जाती है। यह स्तोत्र दिल में एक नया जोश, अदम्य प्रेरणा और गहरी जिज्ञासा जगाता है, जिससे सार के प्रति एक अनोखी भक्ति की प्रेरणा मिलती है। ब्रह्मांड की उत्पत्ति के सिद्धांत को, अलग-अलग पुरानी थ्योरी से लेकर मॉडर्न साइंस की संबंधित थ्योरी तक, पेश करता है। उनका विस्तार से वर्णन करके, उनकी सीमाओं को साफ-साफ बताकर, और श्रुति-संगत तर्क के ज़रिए सार का निर्धारण आसानी से समझाकर, शंकराचार्य ने सच्चे जिज्ञासु को अलग-अलग मतों द्वारा बनाए गए अलग-अलग संप्रदायों की बाड़ों की उलझनों से आसानी से बचाया है। 'दक्षिणामूर्तिअष्टकम' में शंकराचार्य ने कदम दर कदम आत्म-विचारों की श्रुति और स्मृतिसमता की एक अद्भुत सीरीज़ बनाई है। पहले श्लोक का सार दूसरे श्लोक में बहुत ही सरलता और स्वाभाविक रूप से बताया गया है, इसलिए सच्चे साधक और अनोखे विचारक को विचार की निरंतरता का साफ दर्शन हुए बिना नहीं रहा जा सकता। इस स्तोत्र के आरंभ में शंकराचार्य ने आत्मा और ब्रह्म के स्वरूप का स्पष्ट वर्णन किया है, साथ ही द्वैत की घटना का दर्शन कराया है, जिसका अधिष्ठान परम सत्य है।

प्रस्तावना

विश्व साहित्य के अथाह क्षितिज में एक सर्वोच्च कविता, सिंधु के रसातल में एक गहरा, गुप्त, रहस्यमयी और अगोचर दार्शनिक ज्ञान और शास्त्रों का सबसे सूक्ष्म आत्म-चिंतन, पहले जगद्गुरु शंकराचार्य द्वारा छंद में रचित, यह स्तोत्र कई मायनों में महत्वपूर्ण है। 'श्री दक्षिणामूर्ति', सभी ज्ञान के स्वामी और पूरी दुनिया के गुरु, भगवान शंकर के अवतार माने जाते हैं। आदि शंकराचार्य द्वारा रचित छंद 'दक्षिणामूर्तिअष्टकम' या 'दक्षिणामूर्तिस्तोत्र' के रूप में प्रसिद्ध हुए। केवल दस छंदों वाला वर्तमान स्तोत्र, अत्यंत रहस्यमयी, गंभीर और गहरा है। इस स्तोत्र के अध्ययन से हमें पता चलता है कि 'दक्षिणामूर्तिअष्टकम' में शंकराचार्य ने अद्वैत वेदांत के सिद्धांतों का वर्णन किया है और अपने कैवलद्वैत को व्यक्त किया है।इस मतलब को ऐसा बताकर, उन्होंने दिखने वाली दुनिया के झूठ को साबित कर दिया है। हालाँकि, असल

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 11, Issue , 06 2022

में, उनका मतलब है कि आत्मा और ब्रह्म में कोई फ़र्क नहीं है। जब आत्मा और ब्रह्म का टाइटल खत्म हो जाता है, तो दोहरी दुनिया का भ्रम खत्म हो जाता है और फिर जो एक अनोखा तत्व बचता है, वही एहसास के लायक है, शंकराचार्य कहते हैं। सद्गुरु के परम प्रेम का पात्र बने बिना या गुरु की अलौकिक कृपा से एकता और अभेद का दर्शन पाए बिना, दोहरी दुनिया का आखिरी अंत मुमकिन नहीं है। इसलिए, शंकराचार्य भजन की शुरुआत में ही बताते हैं कि गुरु की कृपा के बिना परम तत्व को पाना मुमकिन नहीं है।

कीवर्ड: भारतीय दार्शनिक ज्ञान, अद्वैततत्व, दुनियावी चीज़ों का दर्शन, इंसानी ज़िंदगी का लक्ष्य, आत्मा और ब्रह्म का स्वभाव, दुनियावी घटनाएँ, खुद का सार, दुनिया, परम स्वभाव, वेदांत का ज्ञान.

शोध के उद्देश्य:

- भारतीय फिलॉसफी में बताए गए यूनिवर्स के बनने का फिलॉसफी के तरीके से मूल्यांकन करना।

- वेदांत में बताए गए नॉन-डुअलिज्म की तुलना मैटेरियल दुनिया की घटनाओं से करना।

- स्तोत्र में बताए गए ब्रह्म और आत्मा के नेचर को बताना।

- शंकराचार्य के फिलॉसफी को दुनिया के एलिमेंट्स से जोड़ना।

दक्षिणामूर्ति स्तोत्र में केवलाद्वैतवाद।

'दक्षिणामूर्तिअष्टकम' की शुरुआत में ही, शंकराचार्य दुनिया के सच के बारे में बताते हैं, और वेदांत फिलॉसफी के सबसे कॉन्फिडेंशियल सब्जेक्ट को छूते हैं। इस चतुर्चक्र श्लोक के पूर्वार्ध में शंकराचार्य ने आत्मा और ब्रह्म की एकता दिखाने के लिए श्रुति के महान श्लोकों का उपयोग किया है- 'तू ही वह है' (छान्दोग्य उपनिषद, 6/16/3) के 'त्वम्' (तू) का वर्णन किया गया है। 'त्वम्' (तू) पद का अर्थ जीव है, जिसे शंकराचार्य ने अज्ञानी जीव के रूप में उल्लेखित किया है, जिससे पता चलता है कि जैसे निद्रा में स्वप्न देखने वाला स्वप्नलोक को अपने भीतर होते हुए भी अपने से बाहर देखता है। स्वप्नलोक जीव की ही रचना होने और स्वप्न देखने वाले से पृथक होने पर भी स्वप्न के पदार्थों को अपने से पृथक जानता है, वैसे ही जाग्रत अवस्था में अज्ञानी जीव अज्ञानता की स्थिति में अपने भीतर के जगत को माया के आवरण के कारण अपने से बाहर उत्पन्न हुआ देखता है। इस प्रकार श्लोक के पूर्वार्ध में 'त्वम्' पद में अज्ञानी जीव का शाब्दिक वर्णन हुआ है।

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

इस स्तोत्र का मकसद आत्मा के ज्ञान का वर्णन करना है। आत्मा के ज्ञान का मतलब है, अलग-अलग और अनंत ब्रह्मांड में भटक रहे जीवों को खुश और दुखी करना, उन्हें उसका सही-सही दर्शन कराना, उन्हें शाश्वत, अमर, अपरिवर्तनशील, एक, अद्वितीय, अविभाज्य, सुख-दुख के चक्र से मुक्त, अविनाशी, अविभाजित आत्मा के रूप में परिचय कराना। इस तरह, जब अज्ञानी आत्मा खुद को आत्मा के रूप में जानती है, यानी सच्चे आत्मा को अलग करती है या उसे चित्, यानी चेतना के रूप में पहचानती है, और उसे अप्रत्यक्ष रूप से आनंद के रूप में अनुभव करती है, तो उसे आत्मा का ज्ञान हो गया कहा जाता है। मैं ब्रह्म का शाश्वत, अजन्मा, परिवर्तनहीन, निराकार, सच्चा आनंद हूँ। ऐसा ज्ञान ही आत्म-साक्षात्कार है। जो मुक्ति, मोक्ष, बंधन से मुक्ति या आत्मा और ब्रह्म की एकता की नश्वरता का एहसास कहलाता है। और हर अनजान इंसान को ऐसी नश्वरता का एहसास कराना ही इस भजन का पवित्र मकसद है।

'दक्षिणामूर्तिअष्टकम' के दूसरे श्लोक में शंकराचार्य का अद्वैतवाद दिखता है। उनका ब्रह्म-कारणवाद दुनिया की शुरुआत के बारे में कई भ्रम दूर करता है। शंकराचार्य माया, एक खास ब्रह्म, यानी भगवान को दुनिया की शुरुआत का कारण मानते हैं। शंकराचार्य के अनुसार, ब्रह्म ही एकमात्र है। दुनिया ही दुनिया की शुरुआत और वजह है। इसके अलावा, जैसे पहले श्लोक में शंकराचार्य ने 'त्वम्' शब्द का ज़िक्र किया है और उसका सीधा मतलब आत्मा बताया है, वैसे ही इस दूसरे श्लोक में 'स' शब्द के 'त्' शब्द का ज़िक्र किया है और उसका सीधा मतलब भगवान बताया है। बीज के अंदर अंकुर की तरह, यह दुनिया (बनने से) पहले भी एक जैसे रूप में थी, यानी बिना किसी विकल्प के। फिर माया की कल्पना से (यह दिशा, समय जैसे अजीब अंतरों के साथ दिखाई दी), ऊपर दिए गए कथन से, दुनिया कहाँ से और कैसे बनी? इसे बनाने वाला कौन है? जो लोग जानना चाहते हैं, उनके लिए शंकराचार्य कैवलद्वैत दर्शन और श्रुति के तर्क की मदद से दुनिया बनने का सिद्धांत समझाते हैं।

दक्षिणामूर्तिअष्टकम' के तीसरे श्लोक में, शंकराचार्य तत्वमसिः महावाक्य के असि के बारे में सोचते हैं, समझाते हैं और बताते हैं कि 'त्वम्' का मतलब आत्मा है और 'तत्' का मतलब ईश्वर है, दोनों एक हैं, इस तरह आत्मा और ईश्वर की एकता और कोई फ़र्क नहीं दिखता। इसके अलावा, 'त्वम्' का मतलब साक्षी चेतना आत्मा है और 'तत्' का मतलब सच्चिदानंद ब्रह्म है, दोनों एक हैं, जैसा कि 'असि' पाद से पता चलता है। इस तरह, आत्म-साक्षात्कार के समय, आत्मा और ब्रह्म दोनों एक हो जाते हैं। अपने असली रूप में, आत्मा या ब्रह्म का सार, पद के भेद से जीवन और ईश्वरत्व प्राप्त करता है। ज्ञान के युग में, जब पद मिट जाता है, तो दोनों एक हो जाते हैं। आखिर में, सिर्फ़ ब्रह्म सार ही रह जाता है, इतना ही

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

नहीं, बल्कि यह एहसास होता है कि मैं ही वह अविभाजित, अविभाजित ब्रह्म हूँ। ऐसा एहसास सद्गुरु द्वारा वेदों के ज़रिए दी गई आत्म-साक्षात्कार की शिक्षाओं का नतीजा है, शंकराचार्य यह कहते हुए खत्म करते हैं, कि, सद्गुरु दक्षिणामूर्ति को नमस्कार, जिन्होंने आत्म-ज्ञान तत्वमसिः महावाक्य का उपदेश दिया और दुनिया के पुनर्जन्म को रोका। इस श्लोक में, शंकराचार्य सामवेद के छांदोग्य उपनिषद (छांदोग्य उपनिषद, 6/8/7) के 'तत्वमसिः महावाक्य' का ज़िक्र करते हैं और समझाने के लिए वेद वचसा शब्द का इस्तेमाल करते हैं। और इनडायरेक्टली सामवेद का ज़िक्र है, लेकिन इसमें एक छिपा हुआ सुझाव है कि चारों वेदों के चार महावाक्यों का मतलब एक ही है, और उन चारों का फल भी एक ही है, यानी मुक्ति, फिर भी इसे साफ़ करने के लिए, शंकराचार्य भवेत् न पुनरावृतिः। का मैसेज देकर बताते हैं कि महावाक्य के लक्ष्य को पाने से जन्म-मृत्यु के चक्कर में वापस नहीं जाना पड़ता। इस तरह, सद्गुरु से वेदों की शिक्षाओं का ज्ञान पाने से आत्मा के सार का एहसास होता है, जिससे भव सागर, संसार सागर से तैरकर पार हुआ जा सकता है।

चौथे श्लोक में शंकराचार्य कहते हैं कि जब हम इंद्रियों के विषयों, भोगों के पदार्थों या अलग-अलग वस्तुओं से दुनिया का ज्ञान प्राप्त करते हैं, तो असल में हमें समझना चाहिए कि दृष्टि, ज्ञान और भोग के रूप में दुनिया का अज्ञान दूर हो जाता है, क्योंकि ज्ञान प्राप्त करना ही फल है, और ज्ञान तब तक नहीं मिल सकता जब तक 'मैं जानता हूँ' इस वृत्ति की प्राप्ति से भौतिक अज्ञान दूर न हो जाए। जब जानने वाला ऐसा कहता है, तो असल में वह सिर्फ़ दिखने वाले संसार या ज्ञान की वस्तु के होने को ही नहीं मानता, बल्कि असल में, देखने वाला या जानने वाला आत्म-तत्व के होने को भी मानता है, तमेव भान्तम् क्योंकि आत्म-तत्व के प्रकाश के बिना या इंद्रियों के ज़रिए दुनिया में यात्रा करने वाले चेतन आत्मा के ज्ञान के प्रकाश के बिना या बाहरी वस्तुओं को ग्रहण किए बिना विषय का ज्ञान संभव नहीं हो सकता। इसीलिए शंकराचार्य कहते हैं, 'अनुभाति समस्तम् जगत' ज्ञान के प्रकाश से 'मैं जानता हूँ' यह ज्ञान प्राप्त होता है।' अगर ज्ञान प्राप्त करने की पूरी सूक्ष्म प्रक्रिया पर ठीक से विचार किया जाए, तो यह सिर्फ़ अज्ञान का दूर होना है। श्लोक में अज्ञानता दूर करने का मतलब समझने के लिए शंकराचार्य 'नानाछिद्रघटोदरस्थितमहादीप-प्रभाभास्वरम्। जैसा सही उदाहरण देते हैं।

'दक्षिणामूर्तिअष्टकम' के छठे श्लोक में शंकराचार्य कहते हैं कि नींद की अवस्था में आत्मा माया से आच्छादित होने के कारण आत्मज्ञान रूपी स्वयं प्रकाशित जगत की वस्तुओं का ज्ञान अनुभव नहीं कर पाती, न ही बाहरी वस्तुओं को अपना विषय बना पाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि नींद में आत्मा का अस्तित्व नहीं होता। वास्तव में आत्मा अपने ही 'सत्'

ISSN PRINT 2319 1775 Online 2320 7876
Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved Journal UGC CARE Listed (Group-I) Volume 11, Issue , 06 2022

अस्तित्व के रूप में वहीं रहती है। इसलिए इसे अवस्थात्रयसाक्षी कहा गया है। इसीलिए शंकराचार्य श्लोक के दूसरे श्लोक में कहते हैं कि नींद में आत्मा केवल अपने ही 'सत्' स्वरूप में होती है। 'सम्मात्रः अभूत' होने के बावजूद वह दूसरों को प्रकाशित नहीं करती।

दक्षिणामूर्तिअष्टकम' के सातवें श्लोक में आत्मा की नित्यता की निरन्तरता को किस प्रकार व्यक्त किया गया है, यह समझाते हुए शंकराचार्य कहते हैं कि शरीर की बदलती अवस्थाओं जैसे बचपन, किशोरावस्था, युवावस्था, वृद्धावस्था आदि में तथा सूक्ष्म परिवर्तनशील अवस्थाओं जैसे जागना, स्वप्न और सुषुप्ति में अथवा मन की अवस्थाओं जैसे सुख-दुःख में आत्मा किस प्रकार अनासक्त रहती है, सबकी साक्षी बनकर स्वयं को अहम् अथवा 'मैं हूँ' के रूप में प्रकट करती है? इस प्रकार आत्मा ही सभी परिवर्तनों, परिस्थितियों, अवस्थाओं अथवा अनुभवों की साक्षी है। जो अद्वितीय और अनूठा है, वही नित्यता को प्राप्त करता है। आत्मा किस प्रकार स्वयं को सबकी साक्षी के रूप में प्रकट करती है? इसे समझाते हुए शंकराचार्य 'अस्मद' (मैं) अहम् प्रत्यय का प्रयोग इस प्रकार करते हैं कि, मैं बालक था, बालक बना और फिर युवक बना। मैं, युवक, भविष्य में वृद्ध हो जाऊँगा। इस प्रकार अहम् सभी बदलती हुई भौतिक अवस्थाओं का अपरिवर्तनशील साक्षी, स्वयं आत्मा ही सिद्ध होता है। इस तरह, 'मैं' का मतलब है आत्मा का खुद को जानने वाले के रूप में दिखना। इंद्रियों के काम-धंधे या दुनिया के काम-धंधे में, मैं ही देखने वाला, सुनने वाला, लेने वाला, देने वाला, जानने वाला, करने वाला, बोलने वाला वगैरह हूँ, ऐसे अनुभव में, सभी बदलती अवस्थाओं में जो 'मैं' रूप प्रेरित होता है, वही खुद को जानने वाला आत्मा है।

दक्षिणामूर्तिअष्टकम' के आठवें श्लोक के पहले श्लोक में शंकराचार्य कहते हैं, मायापरिभ्रमितः पुरुषः भेदतः विश्वम् पश्यति 'मनुष्य संसार है, हालाँकि वह संसार है।' इस प्रकार, माया से भ्रमित आत्मा इन सभी वस्तुओं में, हालाँकि वे सभी अविभाज्य, निरंतर और सतत हैं, अंतर करती है और इसका एक सचित्र चित्र प्रस्तुत करती है। वेदांत में, कार्य और कारण केवल माया द्वारा बनाए गए काल्पनिक भेद हैं। यह काल्पनिक भेद सत्य नहीं है क्योंकि यह माया के कारण होता है, जैसे सोना और उसके आभूषण, हालाँकि वे रोजमर्रा की जिंदगी में अलग-अलग दिखते हैं, वास्तव में अविभाज्य हैं। माया के भ्रम के कारण ही आत्मा नौकर-मालिक, गुरु-शिष्य, पिता-पुत्र जैसे भेदभाव के रिश्तों को देखती है। जैसे ही गुरु की कृपा से आत्मा का भ्रम नष्ट हो जाता है, ये सभी (संसार और यह कहते हुए कि अविभाज्य आत्मा (दुनिया के संबंध) प्रकट होते हैं, शंकर कहते हैं, "गुरु के रूप को, दक्षिणामूर्ति भगवान के रूप को नमस्कार है।"

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

'दक्षिणामूर्तिअष्टकम' को खत्म करते हुए, आखिरी दो श्लोकों (9 और 10) में एक भजन के साथ एक उपसंहार भी है। जिनमें सूक्ष्म आत्म-साक्षात्कार या निदिध्यासन, यानी ज्ञान के मार्ग से आत्मा को महसूस करने की क्षमता नहीं है, उन्हें कमज़ोर अधिकारी मानते हुए, शंकराचार्य ऊँच-नीच से मुक्ति के मार्ग पर कल्याण के लिए पूजा का उपदेश देते हैं। यहाँ, नौवें श्लोक में, शंकराचार्य बहिर्मुखी व्यक्ति को अंतर्मुखी व्यक्ति बनाने की उम्मीद से बाह्य पूजा का उपदेश देते हैं, क्योंकि पूजा का अंत केवल मन की शुद्धि, इच्छाओं के नाश या व्यक्ति को बेकार बनाने के लिए होता है। इस प्रकार, इच्छा से मुक्त मन, ध्यान भटकने से मुक्त हो जाता है, एकाग्रता प्राप्त करता है, और स्तोत्र में भजनकार द्वारा दिए गए संदेश के अनुसार, ब्रह्म तत्वमसि भावयात्मनि। निरंतर परम ब्रह्म का चिंतन करता है और ब्रह्म को जानता है। 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति।' शंकराचार्य कहते हैं, 'यस्मात् परस्मात् चराचरात्मकम् विभोः एव ईदम् मुर्त्यष्टकम् इस प्रकार, परब्रह्म स्वयं समग्र रूप में प्रकट होता है, मुर्त्यष्टकम् "पदार्थ और चेतना, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पांच महान तत्व हैं और सूर्य, चंद्रमा और आत्मा सभी परमात्मा के आठ रूप हैं, लेकिन अंत में, वे ब्रह्म की अभिव्यक्ति हैं, और ब्रह्म से अलग या भिन्न कुछ भी नहीं है, यह प्रकट करते हुए, शंकराचार्य श्लोक के उत्तरार्ध में कहते हैं कि नान्यत् किंचन विद्यते। का अर्थ है परमात्मा से भिन्न कुछ भी प्रकट नहीं होता है। इस प्रकार, सूक्त के अंत में, भाष्यकार शंकराचार्य 'ब्रह्म सत्यं जगत्मिथ्या। की व्याख्या करते हैं और अद्वैतवाद की स्थापना करते हैं।

दक्षिणामूर्तिअष्टकम' के आखिरी दसवें श्लोक में स्तोत्र का फल बताया गया है। सर्वात्मत्वमितिस्फुटिकृतमिदम्:' यानी यह पूरा संसार आत्मा का ही रूप है।' ऐसा कहकर शंकराचार्य इस स्तोत्र का सार और मकसद समझाने के साथ-साथ यह भी बताते हैं कि सर्वं खल्विदं'ब्रह्म। यह स्तोत्र वेदांत के सिद्धांत को दिखाने के लिए लिखा गया है। ब्रह्म को हर जगह मौजूद बताना और यह बताना कि ब्रह्म से अलग कुछ भी नहीं है, यही परम ब्रह्म की तारीफ़ है। इस तरह शंकराचार्य परम ब्रह्म की तारीफ़ करना तो भूलते ही हैं, साथ ही इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि उनकी आँखों के सामने दिव्य तत्व होने पर भी वे व्यवहार में भटक न जाएँ। वे बताते हैं कि ब्रह्म या आत्मा जो कि सर्वव्यापी रूप है, उसका श्रवण, ध्यान और ध्यान करने से, यानी ध्यान या जप करने से या रोज़ाना उसका अभ्यास करने से, परम आत्मा का परम फल मिलता है। प्रस्तुत श्लोक में सूक्त का फल बताते हुए वे कहते हैं, सर्वात्मत्वं महाविभूतिसहितं स्यात्' (सर्वस्व और महानता के साथ) आता हैसर्वात्माभाव को महान सिद्ध कहते हैं। शंकराचार्य ने भी ईश्वरत्वं स्वतः स्यात् जिसमें भगवान जैसा फल आसानी से मिल जाता है, जिसमें शंकराचार्य ने ऐश्वर्य जैसे आठ सिद्धों को गिनाया है, इस तरह नौवां श्लोक नतीजे के लिए है, जबकि

Research Paper © 2012 IJFANS. All Rights Reserved

आखिरी दसवां श्लोक फल के मार्गदर्शन के लिए है। इसलिए, अगर हम इस भजन को अष्टक भी मानें, तो कोई एतराज़ नहीं है।

निष्कर्ष

शंकराचार्य ने 'दक्षिणामूर्तिस्तोत्र' के ज़रिए दार्शनिक ज्ञान की पराकाष्ठा दिखाई है। इस स्तोत्रमें उन्होंने न सिर्फ़ दार्शनिक ज्ञान के क्षेत्र में, धार्मिक शिक्षाओं के साम्राज्य में, विचारकों, नैयायिकों, बौद्धों, चार्वाकों की बुद्धि में तूफ़ान पैदा किया है, बल्कि उनके बेतुके तर्कों का खंडन भी किया है। वे यह संदेश भी देते हैं कि 'शून्यता नहीं बल्कि सच्चा आनंद' उन बौद्धों को नहीं मिलता जो खुले मन से आगे आए हैं। वे यह भी बताते हैं कि भक्तों की भलाई के लिए सबसे निचले लेवल के नीच अधिकारियों को माया से कैसे आज़ाद किया जा सकता है, और वे उन लोगों को प्रोत्साहित करते हैं जो आत्म-ज्ञान के प्रकाश को छोड़ देते हैं, अज्ञान के अंधेरे में फंस जाते हैं और उपलब्धियों को ही जीवन का अंतिम लक्ष्य मान लेते हैं, कि वे अपने किए हुए काम, जैसे अणिमा, लघुमा, करें। वे अपनी उपलब्धियों का फल दिखाने में भी नहीं चूके हैं। हालांकि शंकराचार्य का मुख्य उद्देश्य अपनी उपलब्धियों को दिखाने के लिए, स्तोत्र का मकसद मायापरिभ्रमितः से भ्रमित आत्मा को माया के भ्रम से मुक्त करना है, और उसे सीधे ज्ञान के ज़रिए अपने स्वरूप का स्मरण कराना और खुद का एहसास कराना है, जिसके नतीजे में वह सर्वात्मादर्शन की अनोखी और कभी न खत्म होने वाली उपलब्धि पा सकता है।

સંદર્ભગ્રંથ

(૧) આદિ શંકરાચાર્ય (સમગ્ર ગ્રંથાવલી), ભાગ-૦૧: સ્તોત્રો, સંપાદક-ગૌતમ પટેલ, પ્રકાશક શ્રીગોપાલકૃષ્ણ ટ્રસ્ટ, જૂનાગઢ તથા સંસ્કૃત સેવા સમિતિ, અમદાવાદ. પ્રથમાવૃત્તિ,૧૯૯૯.

(૨) શ્રીદક્ષિણામૂર્ત્યષ્ટકમ્, સ્વામી તદ્રૂપાનંદ સરસ્વતી, મનન, સરદાર પુલ પાસે ઝાડેશ્વર, ભરૂચ, પ્રથમાવૃત્તિ,૧૯૯૩.

(૪) સંસ્કૃત સ્તોત્રકાવ્યનો ઉદ્ભવ, વિકાસ અને સ્વરૂપ, ડૉ. મણિભાઈ પ્રજાપતિ, સંસ્કૃત એકેડમી એન્ડ ઇન્ડોલોજીકલ રિસર્ચ ઇન્સ્ટિટયૂટ,દ્વારિકા, પ્રથમ સંસ્કરણ,૧૯૩૮.

(૬) પ્રશિષ્ટ સંસ્કૃત સાહિત્યનો ઇતિહાસ, ડૉ.અમૃત ઉપાધ્યાય, યુનિ. ગ્રંથ નિર્માણ બોર્ડ, ગુજરાત રાજ્ય, અમદાવાદ, પ્રથમાવૃત્તિ,૧૯૯૩.